लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला–82

मधुसूदनसरस्वतीप्रणीतम्

अद्वैतरत्नरक्षणम्

प्रधानसम्पादकः
प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री
कुलपतिः

सटिप्पणानुवादः
अनुवादिका
डॉ.(श्रीमती) आनन्दमयीमहेन्द्रमालू

राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्
मानितविश्वविद्यालयः, नवदेहली

लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला–82

मधुसूदनसरस्वतीप्रणीतम्

अद्वैतरत्नरक्षणम्

प्रधानसम्पादकः
प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री
कुलपतिः

सटिप्पणानुवादः
अनुवादिका
डॉ. (श्रीमती) आनन्दमयीमहेन्द्रमालू

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(भारतशासन-मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनः
राष्ट्रियमूल्याङ्कन-प्रत्यायनपरिषदा 'ए'-श्रेण्या प्रत्यायितः मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली

भूमिका

अध्यात्म की प्राचीन आर्षपरम्परा में ब्रह्म का निर्बाध अस्तित्व स्वीकार किया गया है, जो उपनिषदों एवं ब्रह्म सूत्रों में संग्रथित है। परमार्थसत्यवस्तु एवं उसकी प्राप्ति के साधनों का दिग्दर्शन कराना ही भारतीय दर्शनों का लक्ष्य रहा है। उन दर्शनों में 'वेदान्त' (अद्वैत) दर्शन मूर्धन्यतम है।

यथा नाम से ही स्पष्ट है - वेदान्त अर्थात् 'वेद का अन्त'। विद्वानों ने इस शब्द के कई तात्पर्य स्थिर किए हैं। इस विषय में अद्वैतसिद्धि की टीका 'लघु चन्द्रिका' का निष्कर्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है जिसके अनुसार वेद के तात्पर्यविषयीभूत तत्त्व जहाँ बताए जाएँ वही वेदान्त है[1]। इस आधार पर 'उपनिषद्' ही वेदान्त पद से अभिप्रेत हुए। ब्रह्म सूत्रों में सर्वप्रथम उपनिषद् के वाक्यों का श्रुति सहकृत विचार द्वारा 'अद्वैतवाद' में समन्वय किया गया है जिससे सिद्ध होता है कि उपनिषदों का मूल प्रतिपाद्य 'अद्वैतवाद' है। परमतत्त्व 'ब्रह्म' मात्र का स्वीकार करते हुए द्वैत मात्र के निरासपूर्वक अद्वैत तत्त्व की स्थापना ही उपनिषदों का प्रधान कथ्य है। इसका प्रतिपादन प्रस्थानत्रय (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता) द्वारा किया गया है।

सम्प्रदाय स्थापना

अपने प्रारम्भिक काल से आज तक वेदान्त के क्षेत्र में कई सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। संभवतः उपनिषत्-प्रतिपादित वेदान्त के जिस स्वरूप का व्याख्यान किया जा रहा था, उसे वेदान्त से अतिरिक्त दार्शनिक-सम्प्रदायों-न्यायवैशेषिक, सांख्य, मीमांसा (पूर्व) के प्रहारों से आक्रान्त होना पड़ा। ऐसी विषम परिस्थिति में अपने-अपने मत के अनुसार वेदान्त की युक्तिसंगत व्याख्या प्रस्तुत करने के प्रयास में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत आदि सम्प्रदाय प्रमुख रूप से सामने आए और अनेक सम्प्रदायों का जन्म हुआ।

वेदान्त सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय

आचार्य शंकर ने **अद्वैतवाद** की स्थापना की। इस मत के अनुसार परमतत्त्व निर्गुण, निर्विकार एवं सजातीय-विजातीय-स्वगत त्रिविध भेद शून्य है। ब्रह्मातिरिक्त दृश्य प्रपञ्चमात्र मिथ्या है। श्रीरामानुज ने **विशिष्टाद्वैत** की स्थापना

---

1. पं. मधुसूदन सरस्वती : अद्वैतसिद्धि टीका : लघुचन्द्रिका पृ.875-876

विषयानुक्रमणिका

पुरोवाक् : प्रो. पी.एन्. शास्त्री		*iii*
आत्मनिवेदन : आनन्दमयीमहेन्द्र मालू		*v*
भूमिका		*vii*
श्री मधूसूदन सरस्वती का संक्षिप्त परिचय		*xiv*

अद्वैतरत्नरक्षणम्

	विषय	पृष्ठ संख्या
	उपक्रम	
1.	शास्त्र के आरम्भ का कारण	1-9
2.	श्रुतियों के प्रामाण्य में हेतु	9-19
3.	श्रुतियों की भेदपरता का खण्डन	20-54
4.	समस्त बुद्धियों द्वारा भेद को विषय करने का खण्डन	54-63
5.	अन्योन्याभाव (भेद) के निर्वचन का खण्डन	63-84
6.	निर्विकल्पक (ज्ञान) की भेदविषयता का खण्डन	84-91
7.	भिन्न आदि (अभिन्न, भिन्नाभिन्न) में रहने के विकल्प से भेद की यथार्थता का खण्डन	91-110
8.	स्व से विशिष्ट में, स्व की वृत्ति (स्थिति) मानने पर अंशतः आत्माश्रय की उपपत्तिः	111-125
9.	विशिष्ट में रहने पर सम्बन्ध की अनुपपत्ति	126-134
10.	भेद के रहने में अभेदप्रतिबन्दी का खण्डन	135-144
11.	भेदस्वरूपता का खण्डन	145-177
12.	भेद की पारमार्थिकता का खण्डन	177-179
13.	अद्वैत की ब्रह्मनिष्ठता का उपपादन	180-182
14.	अद्वैत के ब्रह्म और तद्भिन्नस्वरूपत्व का उपपादन	183-184

15.	भेद-निषेध की अनुपपत्तियाँ	185-188
16.	स्वर्गकामी को अग्निहोत्र होम करना चाहिए इत्यादि वाक्यों का अद्वैत में ही पर्यवसान होता है (यागादि कर्मप्रतिपादक वाक्यों का अद्वैत में पर्यवसान)	188-192
17.	सबका ऐक्य होने पर भी तीन सत्ता मानने से सभी व्यवहार की उपपत्ति; व्यावहारिकत्व-निर्वचन के असंभव होने की शंका और उसका परिहार (त्रिविधसत्ता स्वीकार से व्यवहार की उपपत्ति तथा व्यावहारिकत्व का निर्वचन)	193-202
18.	श्रुति-स्मृति-इतिहास आदि के द्वारा अविद्या के स्वरूप का समर्थन	203-216
19.	भ्रममात्र का विषय होना, बाधित होना इत्यादि रूप से व्यावहारिकत्व के स्वरूप का विवेक (व्यावहारिकत्व-स्वरूप-विवेक)	216-250
20.	प्रपञ्च के सत्यसिद्ध करने वाले अनुमान का खण्डन (प्रपञ्चसत्यत्वसाधक अनुमान का खण्डन)	215-265
21.	भ्रमस्थल में तादात्म्यारोप एवं संसर्गारोप	266-313
22.	प्रमास्वरूप विचार	313-369
23.	स्वतः प्रामाण्यवाद	369-395
24.	प्रपञ्चमिथ्यात्वसिद्धि	395-434
25.	एकात्मवाद	435-456
26.	अद्वैतवादी का द्वैतवादी (नैयायिक) के प्रति उपदेश	457-464
27.	'तत्त्वमसि'-महावाक्य विचार	464-470
28.	जगत्कारणत्व विचार	470-481
29.	शब्दापरोक्षत्ववाद	481-493
30.	मुक्तिविचार	493-505
31.	ग्रन्थ-समाप्ति	505

परिशिष्ट

(क)	संकेत सूची	509
(ख)	मूलग्रन्थ प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दकोश	512
(ग)	मूलग्रन्थ प्रयुक्त न्याय एवं नियम कोश	520
(घ)	मूलग्रन्थ प्रयुक्त उद्धरणों की मूलस्थाननिर्देशसहित सूची	524
(च)	मूलग्रन्थ उद्धरित श्रुति-वाक्यों का मूलस्थान निर्देश	529
(छ)	सहायक ग्रन्थ सूची	
	i) मूलग्रन्थ	533
	ii) सन्दर्भग्रन्थ	534

✦✦✦

ससङ्गेन कूटस्थस्य विकारिणा। आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यत इति। तथा च सर्वानृतसंबन्धशून्यं सर्वभ्रमाधिष्ठानं सर्वबाधावधिभूतं परमार्थसत्यमेकरसं ब्रह्मेति प्रतिपादितं भवति। आरोप्याधिष्ठानयोश्च संबन्धाभावो भाष्यकारैः प्रतिपादितः–"तत्रैवं सति यत्र यदध्यस्तं तत्कृतेन दोषेण गुणेन वाणुमात्रेणापि न संबध्यत" इति। विवृतं चैतत्संक्षेपशारीरककारैः–'नदी भूमिरूषरवती मृगतृट्जलवाहिनीं सरितमुद्वहति। मृगवारिपूरपरिवारवती नदी तथोषरभुवं स्पृशती'ति। यत्तु तार्किकंमन्येन जल्पितं–तद्ब्रह्म किञ्चनात्मानं नाश्नोति न व्याप्नोति न वा कश्चिदात्मा तद्ब्रह्म व्याप्नोति, केनाप्यात्मना

संगरहित का, संगयुक्त के साथ, त्रिकालनित्य का विकारी के साथ, आत्म का अनात्मा के साथ सम्बन्ध वास्तविक नहीं होता है[1]।

अतः समस्त मिथ्या सम्बन्धों से रहित, समस्त भ्रम का अधिष्ठान, सभी बाधाओं की सीमा स्वरूप, पारमार्थिक सत्य, एकरस ब्रह्म है, यह प्रतिपादित होता है। आरोग्य तथा अधिष्ठान के मध्य सम्बन्ध का अभाव भाष्यकार (शंकराचार्य) द्वारा बताया गया है-

'वहाँ ऐसा होने पर, जहां जो अध्यस्त है, उसके दोष या गुण से वह थोड़ा भी सम्बद्ध नहीं होता है।[2]' संक्षेपशारीरककार ने इसका विवरण दिया -

'ऊसर भूमि तृण को बहाने वाली नदी को नहीं बहाती है। मृग जलवाली नदी ऊसर भूमि का स्पर्श नहीं करती है[3]।'

स्वयं को तार्किक मानने वाले किसी ने इस प्रकार कहा है[4] -

(पूर्वपक्ष) - वह ब्रह्म किसी आत्मा को व्याप्त नहीं करता है, न ही कोई आत्मा उसे व्याप्त करता है, किसी भी जीवात्मा से यह सम्बद्ध नहीं होता है क्योंकि विभु द्रव्यों (संयोगी) में अन्यतर कर्म या उभय कर्म रूप संयोग का

1. बृह.उप.भा.वा. 2।1।305
2. ब्र.सू. अध्याय भाष्य, पृ. 40
3. सं. शारी.-3।25 तात्पर्य यह है कि - मृगजल के समान प्रपञ्च है, भूमि के समान ब्रह्म है। यथा मृगजल और भूमि के मध्य सम्बन्ध नहीं होता, उसी प्रकार अधिष्ठान प्रपञ्च और अधिष्ठान ब्रह्म के मध्य सम्बन्ध संभव नहीं है।
4. शंकरमिश्र-भेदरत्न, पृ. 5

क्षेत्रज्ञेन नैतत्संबध्यते; विभुनोः संयोगिनोरन्यतरकर्मोभयकर्मावयवसंयोगानुपपत्तौ संयोगाभावात्–इति, तन्न; स्वाध्यायाध्ययनविध्यापादितप्रयोजनवदर्थपरत्वेन वेदेन निष्प्रयोजनार्थानुवादायोगात्। नहि विभुनोः संयोगाभावानुवादे किञ्चित्प्रयोजनमस्ति, अद्वितीयब्रह्मप्रतिपादने च निःश्रेयसं प्रयोजनम्। किञ्च विभुनोरजसंयोगाभ्युपगमात्कथं तदभावानुवादः? तथाहि–मल्लयोरुभयकर्मजसंयोगदर्शनेऽपि यथा स्थाणुश्येनयोरेकतरकर्मजोऽपि संयोगोऽभ्युपेयते एवं श्येनचरणस्थाणुसंयोगाच्छ्येनस्थाणुसंयोगः कर्मजन्य इव संयोगजोऽभ्युपगम्यते, तथैतत्सर्वाजन्योऽपि विभुनोः संयोगो नित्य एव किं नाभ्युपेयते? तथा च प्रयोगः–आत्मा आकाशसंयोगी, ईश्वरसंयोगी वा, घटसंयोगित्वात्, पटवदिति। न च– दिक्कालयोर्व्यभिचारः; पक्षसमत्वात्, विपक्षे च सर्वसंयोगित्वलक्षणविभुत्व-

अभाव होने से संयोग (सम्बन्ध) सम्भव नहीं।

(सिद्धान्तपक्ष) - यह ठीक नहीं। अध्ययन-विधि प्रयोजनवद् अर्थ का विधान करती है। (अतः) वेद के द्वारा निष्प्रयोजन (प्रयोजन रहित) अर्थ का विधान नहीं किया जाता है। 'विभु पदार्थों में संयोग नहीं होता' - इसका अनुवाद करने में कोई प्रयोजन नहीं है। अद्वितीय ब्रह्म के प्रतिपादन में तो मोक्ष रूप प्रयोजन है। और भी (अरुचि) - विभु पदार्थों में भी नित्य (अज) संयोग होता है, अतः श्रुति (प्रमाण) के द्वारा संयोग के अभाव का अनुवाद कैसे? जैसे कि - दो पहलवानों के मध्य दोनों की क्रिया से उत्पन्न संयोग (उभय कर्मजसंयोग) यथा वृक्ष और पक्षी में एक की क्रिया से संयोग (एकतर कर्मजसंयोग) स्वीकृत होता है। उसी प्रकार पक्षी के पैर और वृक्ष के संयोग से वृक्ष और पक्षी का संयोग (संयोग कर्म से उत्पन्न संयोग) होता है - उसी प्रकार सभी अजन्य विभुपदार्थों का संयोग नित्य क्यों नहीं होगा? और अनुमान भी है-

आत्मा आकाश का संयोगी है, अथवा ईश्वर का संयोगी है (प्रतिज्ञा) घट का संयोगी होने से (हेतु) पट के समान (उदाहरण)। (जिस प्रकार पट का घट से संयोग होता है उसी प्रकार आत्मा का भी आकाश से संयोग होगा)।

(पूर्वपक्ष) - दिशा और काल में व्यभिचार होगा।

(सिद्धान्तपक्ष) - यह ठीक नहीं। पक्षसम होने से[1]। यदि ऐसा नहीं मानेंगे

1. यथा 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' अनुमान में पक्ष 'पर्वत' है। गृह, छत इत्यादि पक्षसम है, इनमें साध्य वह्नि सिद्ध नहीं है-इसे लेकर व्यभिचार दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि 'यह नियम है कि 'पक्ष' में या 'पक्षसम' में व्यभिचार नहीं होता। अभी तो इसी अनुमान से पक्ष में साध्य की सिद्धि की जा रही है।

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(भारतशासन-मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनः,
राष्ट्रियमूल्याङ्कन-प्रत्यायनपरिषदा 'ए'-श्रेण्या प्रत्यायितः मानितविश्वविद्यालयः)

56-57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नवदेहली-110058

दूरभाष : 011-28524993, 28521994, 28520977

email : rsks@nda.vsnl.net.in
website : www.sanskrit.nic.in